भिराष्ट्रो विषासहिः।

यथाहमेषां वीराणां

विराजानि जनस्य च।। 6।।

शब्दार्थ— सपत्नक्षयणः — प्रतिद्वन्द्वी को नष्ट करने वाला, वृषा— इच्छा को पूरा करने वाला, अभिराष्ट्रः — अपने सामर्थ्य से राष्ट्र को पाने वाला, विससहिः — जीतने वाला, यथा— जिस प्रकार, अहम्— मैं, एषाम्— इन शत्रुओं के, वीराणाम्— वीरों का, विराजानि— शासन करूँ, जनस्य— अपनी प्रजाओं का, च — और।

अनुवाद— प्रतिद्वन्द्वी को नष्ट करने वाला (प्रजाओं की) इच्छा को पूरा करने वाला, राष्ट्र को सामर्थ्य से प्राप्त करने वाला तथा जीतने वाला (होऊँ), ताकि मैं (शत्रुपक्ष के) इन वीरों का तथा (अपने एवं पराये) लोगों का शासक बनूं।

2.3 (आ) (ii) अथर्ववेद कालसूक्त (19/53)

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्त्राक्षो अजरो भूरिरेताः।

तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ।। 1।।

अन्वय — कालः अश्वः सप्तरश्मिः, सहस्त्राक्षः, अजरः, भूरिरेताः वहति। तम् कवयः, विपश्चितः आ रोहन्ति, तस्य चक्रा विश्वा भुवनानि।

शब्दार्थ— सप्तरश्मिः — सात प्रकार की किरणों वाले। सहस्त्राक्षः — सहस्त्रों नेत्र वाला। अजरः — बूढ़ा न होने वाला। भूरिरेताः — बड़े बल वाला। कालः — काल, समयरूपी। अश्वः — घोड़ा। वहति— चलता रहता है। तम्— उस पर। कवयः — ज्ञानवान्। विपश्चितः — बुद्धिमान लोग। आ रोहन्ति— चढ़ते हैं। तस्य— उस काल के। चक्रा— चक्र, घूमने के स्थान। विश्वा— सब। भुवनानि— सत्ता वाले है।

संदर्भ — प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल—सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि—भृगु हैं तथा देवता — काल है। इसमें सम्पूर्ण जगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा की स्तुति की गई है। इस मंत्र में काल का अश्वरूप में निरूपण किया गया है।

अनुवाद— ऋषि भृगु काल का अश्वरूप से निरूपण करते हुए कहते हैं कि सात रस्सियों वाला, सहस्त्र लोचन वाला, अजर अर्थात् नित्य तरुण रहने वाला, भूरि वीर्य वाला अर्थात् संतान उत्पन्न करने में समर्थ अश्व अपने सवारों को इच्छित स्थानों पर पहुँचा देता है। उस अश्व पर चढ़ने—उतरने में चतुर पुरुष चढ़ते हैं। उस अश्व के चक्र अर्थात् गन्तव्य स्थान सकल भुवन है।

इस मंत्र का दूसरे प्रकार से अर्थ इस प्रकार होगा— जो भूत, भविष्य और वर्तमान की सब वस्तुओं को व्याप्त कर लेते हैं वह अश्व, अनवच्छिन्न कालरूप परमेश्वर सब जगत् के कलयिता हैं। सात रश्मि अर्थात ऋतु वाले हैं, वह दिन—रात रूप सहस्त्र नेत्रों वाले हैं, सदा एकरूप रहने वाले अजर हैं, प्रभूत जगत को रचने की शक्ति से सम्पन्न भूरिरेता हैं। ऐसे काल सब प्राणियों को अपने—अपने कार्य में लगाते हैं। उन कालों को क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष स्वाधीन कर लेते हैं। उस कालात्मक रथ के चक्र सब भुवनों में जाते है।

विशेष—

(i) प्रस्तुत मंत्र में कालचक्र को सम्पूर्ण विश्व में भ्रमणशील बताते हुए उसकी महिमा को व्यक्त किया गया है। वही अश्वरूप परमात्मा अथवा सूर्यरूप में सम्पूर्ण जगत् की आत्मा है।

(ii) इस मंत्र में त्रिष्टुप् छन्द है।

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः।

स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ।। 2।।

अन्वय — एषः कालः सप्त चक्रान् वहति, अस्य सप्त नाभीः, अक्षः नु अमृतम्। सः इमा विश्वा भुवनानि

अञ्जत्, सः कालः नु प्रथमः देवः ईयते।

शब्दार्थ– एषः कालः – यह काल। सप्त– सात, (तीन काल और चार दिशा)। चक्रान्– पहियों को। वहति– चलाता है। अस्य– इसकी। नाभीः – नाभि, पहिये के मध्य स्थाना। अक्षः – धुरा। नु– निश्चय करके। अमृतम्– अमरपन है। इमा– इस। विश्वा– सब। भुवनानि– सत्ता वालों को। अञ्जत्– प्रकट करता हुआ। प्रथमः – पहला। देवः – देवता, दिव्य पदार्थ। ईयते– जाना जाता है।

प्रसंग– प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इसमें सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा की स्तुति की गई है। इस मंत्र में सम्वत्सररूप कालचक्र की महिमा का वर्णन किया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु प्रस्तुत मंत्र में सम्वत्सररूप कालचक्र का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह कालरूपी परमात्मा सात ऋतुरूपी चक्रों को क्रमशः धारण करते हैं। इस संवत्सर की ऋतुसंधिकालरूप सात नाभियाँ हैं। इसका सूक्ष्म अविनश्वर तत्त्व अमृत है। यह संवत्सररूप, सबका आदिभूत देव, नित्यज्ञानरूपकाल, परमात्मा–इन अनेक नाम और रूपों से व्याकृत चराचरात्मक जगत् को प्रकट करता हुआ संहार कर डालता है और संहार करता हुआ भी सबमें व्याप्त होकर स्थिर रहता है।

विशेष–

(i) प्रस्तुत मंत्र में सम्वत्सररूप कालचक्र को ही सृष्टि का रचयिता व संहारक तथा सदा स्थिर माना गया है।

(ii) इस मंत्र में त्रिष्टुप् छन्द है।

पूर्णः कुम्भोधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।

स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन्।। 3।।

अन्वय – काले अधि पूर्णः कुम्भः आहितः, तम् वै सन्तः नु बहुधा पश्यामः, सः इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्, तम् कालम् परमे व्योमन् ब्रह्म आहुः।

शब्दार्थ– काले अधि– काल (समय) के ऊपर। पूर्णः – भरा हुआ। कुम्भः – घड़ा। आहितः – रखा है। वै– निश्चय करके। सन्तः – वर्तमान। नु– ही। बहुधा– अनेक प्रकार से। पश्यामः – देखते हैं। इमा– इन। विश्वा– सब। भुवनानि– सत्ता वालों को। प्रत्यङ्– सामने चलता हुआ है। तम्– उस। कालम्– काल को। परमे– अति ऊँचे। व्योमन्– विविध रक्षा स्थान में। आहुः – वे (बुद्धिमान् लोग) बताते है।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सकल संसार के कारणभूत कालरूप परमात्मा की सर्वव्यापकता व अनेकरूपता को दर्शाया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सब जगत् के कारणभूत नित्य अनवच्छिन्न परमात्मा स्वस्वरूप में, दिन, रात, मास, ऋतु, सम्वत्सर आदि रूप में अनवच्छिन्न जन्य काल से पूर्ण कुम्भ के समान सर्वत्र व्याप्त है। उस जन्यकाल को हम सत्पुरुष दिन–रात्रि आदि के भेद से अनेक प्रकार का अनुभव करते है। वह काल इन दीखते हुए प्राणियों को अभिमुख होकर व्याप्त कर लेते है। विद्वान् पुरुष उस काल को उत्कृष्ट, सांसारिक सुख–दुःख आदि दोषों से शून्य आकाश के समान निर्लेप, अनेक प्रकार से रक्षक परमानन्ददायक स्वस्वरूप में वर्तमान बताते हैं।

विशेष–

(i) यहाँ कालरूप परमात्मा की सर्वव्यापकता तथा अनेकरूपता को व्यक्त कर उसे विद्वानों द्वारा साक्षात्कार अथवा वश में करने योग्य बतलाया गया है।

(ii) इस मंत्र में त्रिष्टुप् छन्द है।

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्येत्।

पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः।। 4।।

अन्वय – सः एव भुवनानि सम् आ अभरत्, सः एव भुवनानि सम् पर्येत्। एषाम् पिता सन् पुत्रः अभवत्, तस्मात् अन्यत् तेजः वै न अस्ति।

शब्दार्थ– सः एव– उसने ही। भुवनानि– सत्ताओं को। सम्– अच्छे प्रकार से। आ– सब ओर से। अभरत्– पुष्ट किया है। पर्येत्– घेर लिया है। एषाम्– इन (सत्ताओं) का। पिता सन्– पहिले पिता होकर। पुत्रः अभवत्– पीछे पुत्र हुआ। तस्मात्– उससे। अन्यत्– दूसरा। तेजः – तेज। वै– निश्चय ही। न अस्ति– नहीं है।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में कालरूप परमात्मा से ही समस्त प्राणियों, भुवन के उत्पन्न होने का उल्लेख करते हुए उसे ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वही काल प्राणियों को प्रकट करते हैं और वही काल भुवनों में (प्राणियों में) व्याप्त है। वही इन प्राणियों के जनक होकर इनके पुत्र हो जाते हैं अर्थात् काल ही पितृरूप से और पुत्ररूप से माना जाता है, जो पूर्वजन्म में पितारूप से व्यवहृत होता है, वही इस जन्म में पुत्ररूप में व्यवहृत होता है, क्योंकि सब अवच्छेदक काल के अधीन हैं। इस सर्वोत्पादक सर्वगत पुत्रादिरूप से भविष्यत् काल से श्रेष्ठ ओर कोई तेज नहीं है।

विशेष–

(i) यहाँ कालरूप परमात्मा ही समस्त प्राणियों की उत्पत्ति और उसे ही पिता व पुत्र दोनों रूपों में बताया गया है। अन्य शास्त्रों में भी एक जन्म में ही पिता के पुत्र होने का वर्णन मिलता है–

''अंगाद् अंगाद् संभवसि हृदयाद् अधि जायसे।

आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्।।''– कौषीतकि उपनिषद् 2/11

(ii) इस मंत्र में त्रिष्टुप् छन्द है।

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।

काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते।।5।।

अन्वय – कालः अमूम् दिवम्, कालः इमाः पृथिवीः अजनयत्। काले ह भूतं च भव्यम् इषितम् ह वि तिष्ठते।

शब्दार्थ– कालः – काल, समय ने। अमूम्– उस। दिवम्– आकाश को। कालः – काल ने। इमाः – इन। पृथिवीः – पृथिवियों को। अजनयत्– उत्पन्न किया है। काले– काल में। ह– ही। भूतम्– बीता हुआ। च– और। भव्यम्– होने वाला। ह– ही। वि– विशेष करके। तिष्ठते– ठहरता है।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा से ही पृथ्वी की उत्पत्ति तथा भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान को उसी पर आश्रित बताया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कालरूपी परमात्मा ने इस द्युलोक (आकाश) को प्रकट किया है और सब प्राणियों की आधारभूता पृथिवी को भी काल ने ही प्रकट किया है। इस काल में ही भूतकाल, भविष्यत्काल और अभिलषित वर्तमान कालावच्छिन्न विशेष रूप से आश्रित रहता है।

विशेष–

(i) यहाँ ऋषि ने काल से ही पृथ्वी व आकाश की उत्पत्ति बताते हुए समस्त कालों को भी उसी कालरूप परमात्मा पर आश्रित माना है।

(ii) इस मंत्र में बृहती नामक वैदिक छन्द है।

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः।

काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्विपश्यति।। 6।।

अन्वय – कालः भूतिम् असृजत। काले सूर्यः तपति। काले ह विश्वा भूतानि। काले चक्षुः वि पश्यति।

शब्दार्थ– कालः – काल, समय ने। भूतिम्– ऐश्वर्य को। असृजत– उत्पन्न किया है। सूर्यः – सूर्य। तपति– तपता है। काले– काल में। ह– ही। विश्वा– सब। भूतानि– सत्ता में। काले– काल में। चक्षुः – आँख। वि– विविध प्रकार से। पश्यति– देखती है।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा से ही संसार की उत्पत्ति एवं सूर्य आदि द्वारा उसी काल के आश्रय से अपने कर्म किये जाने का वर्णन हुआ है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कालरूप परमात्मा की महिमा और सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कालरूपी परमात्मा ने इस उत्पत्तिशील जगत् की रचना की है और काल के प्रेरक होने से ही आदित्य इस जगत् को प्रकाशित करते हैं। काल के ही आश्रय में सब प्राणी रहते हैं। काल में ही चक्षुष्मान् इन्द्रियादि का अधिष्ठाता अपनी–अपनी इन्द्रियों के व्यापार को करता है।

विशेष–

(i) यहाँ काल का सर्वव्यापक रूप प्रकट किया गया है।

(ii) इस मंत्र में अनुष्टुप् छन्द है।

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्।

कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः।। 7।।

अन्वय – काले मनः, काले प्राणः, काले नाम समाहितम्। आगतेन कालेन इमाः सर्वाः प्रजाः नन्दन्ति।

शब्दार्थ– काले– काल में। मनः – मन। प्राणः – प्राण। नाम– विविध वस्तुओं के नाम। समाहितम्– संग्रह किया गया है। आगतेन– आये हुए। कालेन– काल के साथ। इमाः – यह। सर्वाः – सब। प्रजाः – प्रजाएँ। नन्दन्ति– आनन्द पाती हैं।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा में ही मन, प्राण, नाम आदि समाविष्ट बताया गया है तथा समस्त प्रजा के कार्यो का कारण भी इसे ही माना गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कहते हैं कि कालरूपी परमात्मा में जगत् को रचने की इच्छा का निमित्त मन रहता है। उसमें ही सब जगत् का अन्तर्यामी सूत्रात्मा प्राण रहता है अर्थात् उसी कालरूप परमात्मा में सब जगत् के मन और पञ्चवृत्तिक प्राण रहते हैं और सब वस्तुओं के नाम भी उसी में रहते हैं और वसन्त आदि रूप से आये हुए काल से ही यह सब प्रजायें अपने–अपने कार्य की सिद्धि होने के कारण सन्तुष्ट होती हैं।

विशेष–

(i) इस मंत्र में अनुष्टुप् छन्द है।

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजायतेः।।8।।

अन्वय – काले तपः, काले ज्येष्ठम्, काले ब्रह्म समाहितम्। कालः ह सर्वस्य ईश्वरः, यः प्रजापतेः पिता आसीत्।

शब्दार्थ– काले– काल (समय) में। तपः – ब्रह्मचर्यादि तप। ज्येष्ठम्– श्रेष्ठ कर्म। ब्रह्म– वेद– ज्ञान। समाहितम्– संग्रह किया गया है। ह– ही। सर्वस्य– सबका। ईश्वरः – स्वामी। यः – जो। प्रजापतेः –

प्रजापालक का। आसीत् – हुआ।

संदर्भ– प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा को ही तप, ज्येष्ठ, ईश्वर, पिता तथा प्रजापति आदि रूपों में बतलाया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कालरूपी परमात्मा में जगत् को रचने का पर्यालोचनरूपी तप प्रतिष्ठित है तथा उसी में सबका आदिभूत हिरण्यगर्भरूपी तत्त्व ज्येष्ठ समाहित है। काल में ही ब्रह्म समाहित है। काल ही सम्पूर्ण जगत् का स्वामी है। जो काल प्रजा की रचना करने वाले चतुर्मुखी ब्रह्मा अर्थात् प्रजापति का भी पिता है।

विशेष–

(i) ''तपसा चीयते ब्रह्म'' इत्यादि के द्वारा तप शब्द पर्यालोचन के अर्थ में जाना जाता है।

(ii) सम्पूर्ण जगत् के आदिभूत हिरण्यगर्भ नामक तत्त्व को ही 'ज्येष्ठ' कहा जाता है।

(iii) प्रस्तुत मंत्र में काल को सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा का भी पिता माना गया है, इससे काल की सर्वोत्कृष्टता व्यक्त होती है।

(iv) इस मंत्र में अनुष्टुप् छन्द है।

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्।

कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम्।। 9।।

अन्वय – तेन इषितम्, तेन जातम्, तत्तस्मिन्, प्रतिष्ठितम्। कालः ह ब्रह्म भूत्वा परमेष्ठिनं बिभर्ति।

शब्दार्थ– तेन– उस काल द्वारा। जातम्– उत्पन्न हुआ। तत्– यह जगत्। तस्मिन्– उस (काल) में। प्रतिष्ठितम्– दृढ़ ठहरा है। कालः – काल ही। ब्रह्म– बढ़ता हुआ अन्न। भूत्वा– होकर। परमेष्ठिनम्– सबसे ऊँचे ठहरे हुए (मनुष्य) को। बिभर्ति– पालता है।

प्रसंग– प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा से ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति तथा उसमें प्रतिष्ठित बताते हुए काल का ब्रह्मरूप में वर्णन किया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह सब स्त्रष्टव्य जगत् उसी काल से उत्पन्न हुआ है और उसी काल में प्रतिष्ठित हैं काल ही सत् चित् आनन्द रूप अबाध्य परमार्थ तत्त्व ब्रह्म होकर परम स्थान सत्यलोक में स्थित चतुर्मुख ब्रह्मा को धारण करता है।

विशेष–

(i) यहाँ काल को सम्पूर्ण जगत् का स्त्रष्टा एवं प्रतिष्ठापक तथा ब्रह्मस्वरूप वाला बतलाया गया है।

(ii) इस मंत्र में अनुष्टुप् छन्द है।

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।

स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत।। 10।।

अन्वय – अग्रे कालः प्रजाः, कालः प्रजापतिम् असृजत। कालात् स्वयम्भूः, कश्यप, कालात् तपः अजायत।

शब्दार्थ– अग्रे– पहिले। कालः – काल ने। प्रजाः – प्रजाओं को। प्रजापतिम्– प्रजापालक को। असृजत– उत्पन्न किया है। कालात्– काल से। स्वयम्भूः – अपने आप उत्पन्न होने वाला। कश्यपः – कश्यप, द्रष्टा परमेश्वर। तपः – ब्रह्मचर्य आदि नियम। अजायत– प्रकट हुआ है।

प्रसंग– प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में कालरूप परमात्मा से प्रजापति, प्रजा तथा कश्यप

की उत्पत्ति का उल्लेख करते हुए उसे स्वयम्भू बतलाया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कालरूप परमात्मा के वैशिष्ट्य को प्रकट करते हुए कहते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में काल ने प्रजापति को उत्पन्न किया है और प्रजाओं को भी काल ने ही रचा है। यह काल स्वयंभू है, अर्थात काल के अतिरिक्त और कोई दूसरा काल नहीं है। इसके द्रष्टा कश्यप नामक सूर्य भी इसी काल से प्रकट हुए हैं। (कश्यप नामक सूर्य आरोग, भ्राज आदि सूर्यो में आठवें सूर्य हैं।)

विशेष–

(i) तैत्तिरीय आरण्यक में कहा है– ''कश्यपोऽष्टमः स महामेरूं न जहाति''– कश्यप आठवें सूर्य हैं, वह महामेरू को नहीं त्यागते हैं।

(ii) प्रस्तुत मंत्र में कालरूप परमात्मा को सर्वव्यापक बताते हुए उसी से दृष्टि की एवं उसको प्रकाशित करने वाले सूर्य की उत्पत्ति मानी गई है।

(iii) इस मंत्र में अनुष्टुप् छन्द है।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।

कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः।। 11।।

अन्वय – कालात् आपः, कालात् ब्रह्म, तपः, दिशः समभवन्। कालेन सूर्यः उदेति, काले पुनः नि विशते।

शब्दार्थ– कालात्– काल (समय) से। आपः – प्रजायें। ब्रह्म– वेदज्ञान। तपः – ब्रह्मचर्यादि नियम। दिशः – दिशाएँ। समभवन्– उत्पन्न हुई हैं। कालेन– काल के साथ। सूर्यः – सूर्य। उदेति– निकलता है। पुनः – फिर। नि विशते– डूब जाता है।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा से जल, ब्रह्म, तप, दिशाएँ आदि की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सर्वजगत् के कारणभूत कालरूपी परमात्मा से ब्रह्माण्ड के आधारभूत जल प्रकट हुए। उस काल से ही यज्ञ कर्म, कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि तप और पूर्व आदि दिशाएँ प्रकट हुई। प्रेरक काल के द्वारा ही सूर्य उदय को प्राप्त होता है और काल में ही सूर्य फिर अस्त हो जाता है।

विशेष–

(i) यहाँ काल से सर्वप्रथम जल की उत्पत्ति बतलाई गई है। मनुस्मृति में भी जल को ही सृष्टि में सर्वप्रथम उत्पन्न बतलाया गया है– ''अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यम् अवाकिरत्। तदण्डं अभवत् हैमम्''– ''उन्होनें (परमात्मा ने) पहिले जल की सृष्टि की और उनमें अपने वीर्य को स्थापित किया, यह सुवर्ण का अण्ड हुआ।''

(ii) इस मंत्र में अनुष्टुप् छन्द है।

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही।

द्यौर्मही काल आहिता।।12।।

अन्वय – कालेन वातः पवते, कालेन पृथिवी मही, काले द्यौ मही आहिता।

शब्दार्थ– कालेन– काल (समय) से। वातः – वायु। पवते– शुद्ध करता है। पृथिवी– पृथ्वी। मही– बड़ी है। द्यौ– आकाश। आहिता– रखा है।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा की महिमा

का वर्णन करते हुए उसी पर वायु, पृथिवी, द्युलोक आदि को आश्रित बताया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते है कि काल से वायु बहता है, काल ने ही विशाल पृथिवी को दृढ़ता से स्थापित कर रखा है और विशाल द्युलोक भी कालरूप आधार में स्थापित है।

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा।

कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत।।13।।

अन्वय – कालः पुत्रः ह भूतं च भव्यम् पुरा अजनयत्। कालात् ऋचः समभवन्, कालात् यजुः अजायत्।

शब्दार्थ– कालः – काल (समय) रूपी। पुत्रः – पुत्र ने। ह– ही। भूतम्– बीता हुआ। च– और। भव्यम्– होने वाला। पुरा– पहिले। अजनयत्– उत्पन्न किया है। कालात्– काल से। ऋचः – ऋचायें। सम् अभवन्– उत्पन्न हुई है। यजुः – यजुर्वेद। अजायत्– उत्पन्न हुआ है।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा से ही भूत, भविष्यत्, पुत्र, ऋचा आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कहते हैं कि कालरूप प्रेरक पिता से ही पुत्र प्रजापति ने भूत, भविष्यत् और वर्तमान को प्रकट किया हैं। कालरूपी परमात्मा से पादबद्ध मन्त्र (ऋचाएँ) प्रकट हुए हैं और उससे ही प्रश्लिष्ट पाठरूप यजुर्वेद प्रकट हुआ है।

विशेष–

(i) इस मंत्र में अनुष्टुप् छन्द है।

कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम्।

काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ।। 14।।

अन्वय – कालः यज्ञं देवेभ्यः अक्षितम् भागं सम् ऐरयत्। काले गन्धर्वाप्सरसः, काले लोकाः प्रतिष्ठिताः।

शब्दार्थ– कालम्– काल ने। यज्ञं– सत्कर्म को। देवेभ्यः – विद्वानों के लिए। अक्षितम्– अक्षय। भागम्– भाग। सम्– पूरा–पूरा। ऐरयत्– भेजा है। गन्धर्वाप्सरसः – गन्धर्व ओर अप्सराएँ। लोकाः – सब लोक। प्रतिष्ठिताः – रखे हुए हैं।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त 'काल–सूक्त' से उद्धृत है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि–भृगु हैं तथा देवता – काल है। इस मंत्र में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए उसी से गन्धर्व, अप्सराएँ, समस्त लोक आदि को उत्पन्न बतलाया गया है।

अनुवाद– ऋषि भृगु कहते हैं कि कालरूप परमात्मा ने ही इन्द्र आदि देवताओं के भागरूप में कल्पित प्रकृतिविकृत्यात्मक सोमयज्ञ को उत्पन्न किया हैं। वाणी की विशेषता को धारण करन वाले गायक गन्धर्व तथा जल अथवा अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली अप्सराएँ भी कालरूपी आधार में ही रहती हैं। सब ही लोक काल में ही प्रतिष्ठित हैं।

2.5 सारांश –

यजुर्वेद का भारतीय जीवन में निजी वैशिष्ट्य है। यजुर्वेद ने यज्ञों को आवश्यकतानुसार वर्षा, समृद्धि अथवा अन्य इच्छित फल देने वाला वर्णित करके उन्हें असाधारण महत्त्वशाली बना दिया। यजुर्वेद में न केवल याज्ञिक विधि विधान हैं अपितु विभिन्न नियमादि की स्थापना अथवा इच्छित परिवर्तनों की दृष्टि से किया गया वाद विवाद भी प्राप्त होता है। इस दृष्टि से यजुर्वेद का मुख्य उद्देश्य पौरोहित्य शिक्षा जान पड़ता है जिससे पुरोहित गण भली प्रकार यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करा सकें। वैदिक कर्मकाण्ड के साथ साथ धर्म के इतिहास की दृष्टि में भी यजुर्वेद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारतीय धर्म के इतिहास के विविध रूपों एवं प्रभावों के सामान्य अथवा विशिष्ट